महर्षि गौतम - एक संक्षिप्त परिचय

डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान पर्थ,
ऑस्ट्रेलिआ – ६०२५

महर्षि गौतम - एक संक्षिप्त परिचय

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
ऑस्ट्रेलिआ – ६०२५

Website: https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com

(२०१७)

क्रमावली
महर्षि गौतम - एक संक्षिप्त परिचय

वंशावली.....4
जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धि.....13
विवाह.....20
जनकल्याण यज्ञ.....27
गृहस्थ जीवन.....31
अहिल्या को श्राप.....33
उपसंहार.....39

महर्षि गौतम - एक संक्षिप्त परिचय

वंशावली

महर्षि गौतम, ब्रह्मपुत्र महर्षि अंगीरस के प्रपौत्र, महर्षि उतथ्य के पौत्र एवं महर्षि दीर्घतमस के पुत्र हैं।

महर्षि अंगीरस ब्रह्मदेव के तृतीय मानस पुत्र माने जाते हैं। इस प्रकार महर्षि गौतम का पारिवारिक सम्बन्ध सीधा ब्रह्मदेव से है। महर्षि अंगीरस सप्त-ऋषिओं में से एक महान महर्षि हैं, जिनको प्रथम मन्त्रद्रष्टा के रूप में भी जाना जाता है। महर्षि अंगीरस अथर्ववेद के ज्ञाता के रूप में भी जाने जाते हैं। वह अग्नि देव के उपासक हैं। इन्होंने अग्निदेव की उपासना में अनेक श्लोकों की रचना की है। महर्षि अंगीरस खगोल विज्ञान के आविष्कारक भी जाने जाते हैं। हमारी भारतीय सनातन धर्म पद्धिति में यज्ञोपवीत संस्कार में महर्षि अंगीरस का आवाह्न किया जाता है।

मेघाम मह्यम अंगीरसः। मेघाम सप्तऋषये ददुः ।।
मेघाम मह्यम प्रजापतिः। मेघाम अंगीर ददातु में ।।

स्मृति, सुरूपा एवं स्वधा इनकी तीन धर्म-पत्नियां हैं, तथा महर्षि उतथ्य, महर्षि समवर्त, और देवगुरु बृहस्पति इनके पुत्र हैं।

महर्षि अंगीरस से सम्बंधित अनेक पौराणिक कथाएं हैं। ऐसा माना जाता है के जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म और पुनर्जन्म के ऋण-अनुबंध कारणों का ज्ञान सर्व प्रथम महर्षि अंगीरस के द्वारा ही दिया गया।

हमारे समस्त सम्बन्ध, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पौत्र-पौत्री, घनिष्ठ सम्बन्धी एवं मित्र गण, सभी हमारे कर्मों के ऋण-अनुबंध हैं।

कथा कुछ ऐसी है कि त्रेता युग में चित्रगुप्त नाम के एक अत्यंत धार्मिक, कर्मनिष्ठ, न्याय प्रिय एवं प्रजा के हितैषी सम्राट थे। अभाग्य से वह निःसंतान थे। एक बार महर्षि अंगीरस अपने भ्राता ब्रह्मऋषि नारद के साथ सम्राट चित्रगुप्त के दरबार पहुंचे। सम्राट ने दोनों ही ब्रह्मपुत्रों का बड़ा सम्मान किया। ब्रह्मपुत्रों ने देखा, महाराज अत्यंत चिंतित हैं। कारण पूछा। सम्राट ने कहा, 'हे भगवन, आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं फिर भी मुझ से मेरी चिंता का कारण पूछते हैं। मेरे कोई संतान नहीं है। इस साम्राज्य का मेरे बाद क्या होगा?'

महर्षि अंगीरस ने महाराज को समझाने का अत्यंत प्रयत्न किया, कहा, 'आपकी कुंडली में पुत्र योग नहीं है। यह भगवान् की आप के ऊपर अत्यंत कृपा है। इसी से आपको सुख-शांति है। पुत्र-पुत्री जन्म एक कर्मों का ऋण-अनुबंध है। पुत्र-पुत्री आपके किसी अनायास बुरे कर्म का भी प्रभाव हो सकता हैं, जो आपको शत्रु बनकर कष्ट दे सकते हैं। अतः इसे भगवान् का आशीर्वाद मानकर आप संतुष्ट होइए कि आपको कोई कष्ट पहुंचाने वाला नहीं है। रही बात साम्राज्य की, तो ना आप साम्राज्य लेकर आये थे और ना ही अपने मरण-उपरान्त लेकर जाएंगे। हरि का यह साम्राज्य है। वह कोई आपका उत्तराधिकारी अवश्य ढूंढ लेंगे। यह आवश्यक नहीं कि आपका उत्तराधिकारी आपका पुत्र ही हो।'

लेकिन सम्राट पर तो पुत्र प्राप्ति का मोह चढ़ा हुआ था, अथवा कहिये उन्हें अपने किसी ऋण-अनुबंध का फल मिलना था। महर्षि अंगीरस के चरण पकड़ लिए, 'हे भगवन, मुझे ज्ञान नहीं, पुत्र चाहिए। अगर आपने मुझे पुत्र नहीं दिया तो मैं आपके चरणों में अपना जीवन समाप्त कर दूंगा।'

महर्षि अंगीरस के निर्देशानुसार ब्रह्मऋषि नारद ने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'एवमस्तु'।

सम्राट चित्रकेतु को पुत्र प्राप्ति हुई। उनके कई रानियां थीं। इन पुत्र की माँ राजमाता को सब से अधिक सम्मान मिलने लगा। राजकुमार सम्राट के अत्यंत प्रिय थे। उनका अधिकतर समय राजकुमार और राजमाता के साथ ही बीतने लगा। उस से अन्य रानियों को ईर्षा होने लगी, और वह हर संभव अवसर ढूंढती रहतीं कि किस तरह इस राजकुमार का अंत किया जा सके। अंततः जब राजकुमार ६ वर्ष के हुए तो रानियों को अवसर मिल ही गया। उन्हें विष खिलाकर मार दिया गया। अब सम्राट की हालत तो बस कुछ पूछो ही नहीं। दुःख में सब कुछ, राज्य-साम्राज्य, खाना-पीना, ईश्वर-उपासना, सभी भूल गए। उनके राज-पुरोहित ने महर्षि अंगीरस का आवाह्न किया। फिर से महर्षि अंगीरस अपने भ्राता ब्रह्मऋषि नारद के साथ पहुंचे। सम्राट ने उन दोनों के चरण पकड़ लिए, और विनती करने लगे, 'आप तो यौगिक देवता हैं। मेरे पुत्र को जीवित करो अन्यथा मैं शरीर त्याग दूंगा।'

ब्रह्मऋषि नारद बोले, 'हे राजन, हम तुम्हारे पुत्र को अवश्य जीवित कर देंगे लेकिन एक शर्त है। यह तभी संभव होगा जब वह स्वयं जीवित रहना चाहें।'

सम्राट को आश्चर्य हुआ, बोले, 'भगवन, मेरा पुत्र मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करता है। आप जीवित तो कीजिये, वह मेरे गले से लिपट जाएगा।'

महर्षि अंगीरस के आदेश पर ब्रह्मऋषि नारद ने पुत्र में प्राण डाल दिए। उठते ही पुत्र ने दोनों महर्षियों के चरण छूए, लेकिन सम्राट की ओर एक दृष्टि भी नहीं डाली। पुत्र बोले, ' हे भगवन, मुझे मोक्ष-शान्ति से आपने क्यों बुला लिया? मैं तो विष्णुलोक में भगवान् नारायण के समीप उनकी स्तुति का आनंद उठा रहा था। आपके आदेश से मुझे आना पड़ा। अब आज्ञा दीजिये।'

ब्रह्मऋषि बोले, ' सम्राट तुम्हें बहुत प्रेम करते हैं, और तुम्हें जीवित देखने के लिए उतावले हैं। क्या तुम जीवित होना चाहोगे?'

पुत्र हंसा, और ब्रह्मऋषि के चरण पकड़ कहने लगा, 'भगवन, ब्रह्मऋषि होकर और तत्वज्ञानी होकर भी आप कैसी बातें करते हैं? कौन पिता, कौन पुत्र? आप तो जानते हैं कि मैं पूर्वजन्म में इनका पड़ोसी राजा था। इन्होंने मेरे राज्य पर आक्रमण किया। मुझे हराया, और मैं वीरगति को प्राप्त हुआ। एक क्षत्रिय जब देश की सेवा में वीरगति को प्राप्त होता है तो उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। मैं तो विष्णु लोक में नारायण की सेवा में आनंद ले रहा था कि आपके आदेश से मुझे मृत्युलोक में फिर आना पड़ा। यह

तो मेरे शत्रु हैं। कौन पिता? जिस अवस्था में दुःखी हो मैंने वीरगति पाई और अपने परिवार को असहनीय दुःख दिया, वही इनकी अवस्था कर मैंने अपना बदला ले लिया। मेरा बदला पूरा हुआ। अब तो आप मुझे विष्णु लोक में जाने की आज्ञा दीजिये।'

सम्राट स्तब्ध। कुछ नहीं बोले। पुत्र वापस विष्णु लोक चले गए। तब महर्षि अंगीरस ने सम्राट चित्रगुप्त को सनातन ज्ञान दिया। जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, कर्मों का फल और ऋण-अनुंबन्धों के बारे में बताया, जिस से सम्राट चित्रगुप्त का मोह जाता रहा।

ऐसे ज्ञानी थे महर्षि अंगीरस।

इनके पुत्रों में से एक थे, महर्षि उतथ्य। महर्षि उतथ्य 'उतथ्य गीत' के रचयिता हैं, तथा दर्शन शास्त्र के विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते हैं।

उतथ्य अत्यंत ज्ञानी एवं परम शक्तिशाली महर्षि थे। इन्होने पारिवारिक परम्परा रखते हुए अथर्व एवं ऋग्वेद के कई श्लोकों की विवेचना भी की। इनकी दो पत्नियों थीं, सोमा और ममता। सोमा महर्षि अत्रि की पुत्री थीं। कहते हैं वह अत्यंत विदुषी एवं अलौकिक सुन्दरी थीं। वरुण देव इन पर मुग्ध थे, लेकिन पिता महर्षि अत्रि ने महर्षि उतथ्य को ही उनके अनुकूल पति माना, और उनका विवाह महर्षि उतथ्य से कर दिया। इस से वरुण देव क्रोधित हो गए और उन्होंने सोमा का अपहरण कर लिया। महर्षि उतथ्य ने ब्रह्मऋषि नारद को वरुण देव के पास भेजा ताकि वह उनको समझा सकें और उनकी पत्नी सोमा को वापस भेज दें। वरुण देव ने ब्रह्मऋषि

की बात नहीं मानी। तब ब्रह्मऋषि ने आकर महर्षि उतथ्य से कहा कि समस्त शांति-द्वार बंद हो चुके हैं। अब आप ही अपनी यौगिक शक्ति से वरुण को सोमा को लौटाने के लिए विवश कर सकते हैं। तब महर्षि उतथ्य को क्रोध आया। कमंडल से जल लेकर प्रतिज्ञा की कि अगर वरुण देव सोमा को तुरंत नहीं लौटा देते हैं तो मैं समस्त नदियों और बावड़ियों को सुखा दूंगा तथा इस भूमि को श्रापित कर दूंगा जो कभी फसल एवं वृक्ष न उगा सकेगी। उनकी प्रतिज्ञा से डर कर, एवं उनकी शक्ति का भान कर वरुण देव ने तुरंत सोमा को उन्हें लौटा दिया। ऐसे यौगिक शक्तिशाली महर्षि थे उतथ्य।

उनकी दूसरी पत्नी ममता ने महर्षि दीर्घतमस को जन्म दिया जो महर्षि गौतम जी के पिता हैं।

दीर्घतमस, जिन्हें रहुगन के नाम से भी जाना जाता है, जन्म से अंधे होते हुए भी महाज्ञानी महर्षि थे। वह खगोल शास्त्र के विशेष ज्ञाता थे। इन्होने ऋग्वेद के छठे अध्याय की रचना की है। महर्षि दीर्घतमस ने सहस्रों वर्ष पूर्व राशि चक्र के ३६० अंश में होने का प्रमाण दिया। महर्षि दीर्घतमस ने 'ईष्यावामनष्य' सूत्र की रचना की। 'एकम सदविप्रा बहुदा वदमाती' का प्रथम ज्ञान महर्षि दीर्घतमस ने ही दिया जिसने एक-ईश्वरवाद एवं बहु-ईश्वरवाद को बहुत अच्छी तरह समझाया तथा बतलाया कि यह दोनों एक ही हैं। महर्षि दीर्घतमस ने अपनी पारिवारिक परम्परा को रखते हुए ऋग्वेद के कई श्लोकों की रचना भी की। महर्षि दीर्घतमस भारत वर्ष के जन्मदाता महाराज भरत के राज-पुरोहित थे। उन्हीं के

निर्देश पर देश का नाम भारत पड़ा। महर्षि दीर्घतमस की धर्मपत्नी का नाम प्रदवेश था, और इनके पुत्र महर्षि गौतम हुए।

महर्षि दीर्घतमस ने सम्राट भरत के राज-पुरोहित होते हुए सामाजिक कानूनों की व्यवस्था की। उनमें से एक महत्वपूर्ण कानून था, महर्षि मनु द्वारा रचित विवाह संस्कार एवं स्त्रियों के अधिकार का नियम लागू करना।

महर्षि दीर्घतमस ने विवाह संस्कार एवं स्त्रियों के अधिकार की नई परिभाषा दी। इस संस्कार के अनुसार वर वधु यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वह दो शरीर लेकिन एक प्राण हों। उन में किसी प्रकार का भेदभाव न हो। उनका गृहस्थ जीवन सुख- शांति और समृद्धि पूर्ण हो, कोई कलह न हो और उनकी संतान भी उत्तम हो। विवाह का शाब्दिक अर्थ महर्षि दीर्घतमस ने समझाया, वर का वधू को उसके पिता के घर से अपने घर ले जाना। यह भी समझाया कि यह शब्द उस पूरे संस्कार का द्योतक है जिससे यह कार्य संपन्न किया जाता है। इस संस्कार के बाद ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। महर्षि दीर्घतमस ने समझाया कि इस संस्कार के दो प्रमुख उद्देश्य हैं, मनुष्य विवाह करके देवताओं के लिए यज्ञ करने का अधिकारी हो जाता है और पुत्र उत्पन्न कर सकता है।

दूसरे शब्दों में महर्षि दीर्घतमस ने समझाया कि इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति का पूर्ण रुप से समाजीकरण हो जाता है। संतानोत्पत्ति द्वारा वह अपने वंश को जीवित रखने और उसको शक्तिमान बनाने और यज्ञों द्वारा समाज के प्रति अपने कर्तव्य पूरा करने की प्रतिज्ञा करता है। साथ ही वह व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पूरा करके

धर्म के साथ धन संचय करके अपने जीवन के लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। महर्षि दीर्घतमस ने समझाया कि बिना पत्नी के कोई व्यक्ति धर्माचरण नहीं कर सकता। महर्षि दीर्घतमस के अनुसार इस संसार में बिना विवाह के स्त्री-पुरुषों के शारीरिक संबंध संभव नहीं हैं। धर्मानुसार विवाह के पश्चात ही संतानोत्पत्ति द्वारा मनुष्य इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त कर सकता है। महर्षि दीर्घतमस ने समझाया कि पत्नी ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का स्रोत है।

पुत्री का विवाह करना पिता का परम कर्तव्य उन्होंने बताया। यदि यौवन प्राप्त करने पर भी कन्या के अभिभावक उसका विवाह न करें, तो वे बड़े पाप के भागी होते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि माता पिता उसके यौवन प्राप्त करने पर वर न ढूंढे तो ऐसी दशा में कन्या स्वयं अपने लिए योग्य वर ढूंढ कर विवाह कर सकती है।

विवाह संस्कार के लिए उपयुक्त समय, वर और वधु की योग्यताएँ और विवाह संस्कार के विभिन्न चरणों का विस्तृत वर्णन महर्षि दीर्घतमस ने किया। इसके अनुसार वधू वर के माता की सपिंड संबंधी और पिता के गोत्र की नहीं होनी चाहिए। सपिंड का अर्थ है, माता के पूर्वजों में छः पीढ़ी तक रक्त का सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। गोत्र उस पूर्वज ऋषि के नाम पर होता है जिसका वह परिवार संतति होता है। इन प्रतिबंधों का यह उद्देश्य था कि अति निकट संबंधियों में वैवाहिक संबंध न हों। माता पिता के संतान के साथ या भाई बहन के अवांछनीय वैवाहिक संबंध का भय ही संभवतः इन प्रतिबंधों का मूल कारण था।

महर्षि दीर्घतमस ने समझाया और स्पष्ट किया कि विवाह संविदा नहीं है, अपितु पवित्र बंधन है। विवाह करते समय पति-पत्नी का प्रमुख उद्देश्य धर्म, अर्थ और काम, तीन पुरुषार्थों को करने योग्य बनना है जिससे कि अंत में जीवन के लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

इन्हीं महर्षि दीर्घतमस के पुत्र हैं महर्षि गौतम।

जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धि

महर्षि गौतम का जन्म त्रेता युग में सरयू उपवन में चैत्र महीने की शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा को हुआ था। सरयू उपवन मैथली देश की सीमांओं में है जहाँ विदेह जनक महाराज ने राज किया। पिता महर्षि दीर्घतमस ने उनका नाम 'गौतम' रखा जिसका अर्थ है, विनाश/ अंधकार का नाशक। महर्षि गौतम के प्रथम गुरु उनके स्वयं के पिता थे। वे मेधावी छात्र थे तथा अल्प समय में ही उन्होंने समस्त वेदों, शास्त्रों और भाषाओं का ज्ञान अपने पिता से अर्जित किया।

व्यस्क होने पर महर्षि गौतम ने महादेव का तप किया। प्रसन्न महादेव ने उन्हें उनकी इक्षा जान उन्हें अपना शिष्य बनाया और मन्त्रद्रष्टा ज्ञान दिया। मन्त्रद्रष्टा ज्ञान मिलने के उपरान्त उन्होंने सामवेद के भद्र मन्त्र की रचना की। उसके पश्चात उन्होंने 'गौतम धर्मसूत्र' की रचना की। इस ग्रंथ में उन्होंने अपने पिता के बनाये हुए सामाजिक नियमों का विस्तार किया, तथा एक सभ्य सामाजिक प्रणाली की नींव डाली। इसी कारण महर्षि गौतम को सामाजिक एवं धार्मिक नियमों का पिता भी कहा जाता है।

'गौतम धर्मसूत्र' अब तक उपलब्ध धर्मसूत्रों में प्राचीनतम धर्म नियमों का संकलित ग्रन्थ है। सामयाचारिक धर्म का विवेचन करने वाले इस धर्मसूत्र में २८ अध्याय हैं, जिनमें वर्ण, आश्रम और निमित्त (प्रायश्चित्त) धर्मों का विस्तृत तथा गुणधर्म (राजधर्म) का अपेक्षतया संक्षिप्त विधान है। अध्याय १ एवं २ में धर्मप्रमाण, उपनयन, ब्रह्मचारी, भिक्षु और बैखानस आश्रमों की विधि का उल्लेख है।

अध्याय ३ में गृहस्थाश्रम से संबद्ध संस्कार और कर्तव्य का उल्लेख है। अध्याय ४- ८ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्तव्यों का उल्लेख है। अध्याय ९-१० में राजधर्म का उल्लेख है। अध्याय ११ में दंड, अध्याय १२-१४ में स्त्री धर्म, अध्याय १५-१७ में प्रायश्चित्त एवं अध्याय १८-२८ में पुत्रों के प्रकार आदि का विवेचन है।

संपूर्ण 'गौतम धर्मसूत्र' गद्य में है, यद्यपि कुछ सूत्र वत्तगंधिशैली में लिखे गए हैं। यह अनुष्टुप् के अंश प्रतीत होते हैं। इसकी भाषा पाणिनीय व्याकरण की अनुयायी है।

भारतीय न्याय शास्त्र की स्थापना महर्षि गौतम ने की। वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिये विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है, न्यायशास्त्र कहलाता है। वर्तमान समय में विश्व में उपस्थित कानून प्रणाली प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इसी शास्त्र पर आधारित है। महर्षि गौतम ने भगवान शिव के आदेश पर इस शास्त्र की रचना की ताकि आने वाले समय में जब प्रत्येक व्यक्ति सत्य की अलग अलग प्रकार से व्याख्या करें, तब सत्य तक पहुँचने हेतु यह तार्किक प्रणाली उपयोगी सिद्ध हो। इसका वर्णन 'शिव महापुराण' में भी मिलता है।

महर्षि गौतम के न्याय दर्शन में सोलह तथ्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डाहेत्वाभास-च्छल-जाति-निग्रहस्थानानाम्तत्त्वज्ञानात्, निःश्रेयसाधिगमः।

न्याय दर्शन में प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धात, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान हैं।

न्याय चार तरह के प्रमाणों की चर्चा करता है, अनुभूति (प्रत्यक्ष), अर्थ निकालना (अनुमान), तुलना करना (उपमान) और शब्द (साक्य)। अप्रामाणिक ज्ञान में स्मृति, शंका, भूल और काल्पनिक वाद-विवाद शामिल हैं।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण माने गए हैं। प्रत्यक्ष का अर्थ है इंद्रियों के साथ सीधा संपर्क होना, अर्थात स्वयं सुनना, देखना, चखना आदि। निष्कर्ष तक पहुंचने का जो साधन हो, उसे अनुमान कहते हैं। एक वस्तु से दूसरे वस्तु की तुलना कर उसका ज्ञान होना उपमान कहलाता है। यथार्थ वाक्य या विद्वानों की कही हुई बातें शब्द प्रमाण कहलाती हैं।

प्रमाण के द्वारा हम अपने अनुभव के सही या गलत होने का विश्लेषण कर सकते हैं। दर्शन केवल बड़े दार्शनिकों के बीच संवाद न होकर संपूर्ण समाज के सोचने समझने की पद्धिति है। वाद का अर्थ है, ज्ञान प्राप्ति के लिए की जाने वाली बहस। जिस बहस में जीतना ही उद्देश्य हो, उसे विवाद कहते हैं। यदि हार की संभावना के कारण बहस का उद्देश्य भटक जाए, तो उसे वितंडा कहा जाता है। हेत्वाभास का अर्थ है किसी घटना के लिए ऐसे कारण का दिया जाना, जो कारण तो लगता है लेकिन यथार्थ में वह कारण नहीं है। शब्द की विभिन्न वृत्तियों को उलट कर यदि उसके

द्वारा किसी बात का विरोध किया जाए, तो वह छल कहा जाता है। इस तरह न्याय तर्क के द्वारा सत्य तक पहुंचने का मार्ग है।

इन्द्रियों का विषय के साथ संबंध होने पर जो ज्ञान मिलता है, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण में जो शब्दात्मक नहीं होता, बल्कि आँखों द्वारा प्रत्यक्ष देखा गया हो वह सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। जो खंडित या बाधित न होने वाला निश्चयात्मक ज्ञान होता है, वही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

प्रत्यक्ष प्रमाण की अनुपस्थिति में महर्षि गौतम ने अनुमान का वर्णन किया है। गौतम महर्षि के अनुसार अनुमान तीन प्रकार का है, पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्य तोदृष्ट।

अनुमान के अंतर्गत भूतकाल तथा वर्तमान काल की परिस्थितियों के आधार पर भविष्य का अनुमान लगाया जाता है। उदाहरण स्वरुप जैसे कि वर्तमान में आसमान में बादल घिरे हुए देखकर हम अनुमान लगाते हैं कि अब बारिश होगी। धुआं देख कर ये अनुमान लगाना कि यहाँ निश्चय ही आग लगी होगी, सत्य ही माना जा सकता है। अनुमान विधि के द्वारा यह बात कदाचित ठीक ही बैठती है। जिसमें वर्तमान वस्तु स्थिति का ही एक देश देखकर उसके अवशिष्ट देश के सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है, वह शेषवत् अनुमान है। जैसे कि समुद्र की एक बूँद चखकर समुद्र का सारा पानी खारा है, ऐसा अनुमान। जिस अनुमान में दिये जाने वाले प्रत्यक्ष दृष्ट उदाहरण साध्य के साक्षात् उदाहरण नहीं है, साध्य की जाति के नहीं हैं, बल्कि साध्य के सदृश हैं, वह अनुमान सामान्य अर्थात सादृश्य पर आधारित होने के कारण सामान्य तोदृष्ट

कहलाता है। साध्य का दर्शन सादृश्य के माध्यम से ही हो सकता है। जैसे कि चंद्र की गति हम प्रत्यक्षत: नहीं देख सकते, लेकिन चंद्र अपना स्थान बदलता है, इतना हम देख सकते हैं। इस स्थानान्तरण से हम अनुमान लगाते हैं कि चंद्र अवश्य गतिमान है। उसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियों का प्रत्यक्ष ज्ञान हमें कभी नहीं होता है, बल्कि दूसरे क्रिया साधकों के साथ सादृश्य जानकर ज्ञान साधन के रूप में हम केवल उनका अनुमान ही कर सकते हैं।

उपमान तीसरा प्रमाण माना जाता है। उपमान किसी अप्रसिद्ध वस्तु की ऐसी जानकारी है जो प्रसिद्ध वस्तु के साथ उसका साधर्म्य जानकर होती है। जैसे हमें अगर 'क' नामक प्राणी की जानकारी न हो और हमें किसी सत्य वक्ता ने बताया हो कि 'क' बैल होता है, तो उसके बताए हुए सादृश्य के आधार पर हम 'क' को पहचान सकते हैं।

प्रमाण का चौथा प्रकार शब्द (बात /वार्ता) है, जो आप्त (यथार्थ-वक्ता) का वचन है। शब्द प्रमाण में आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, (पंच ज्ञानेन्द्रिय), अर्थ (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) बुद्धि (ज्ञान), मनस, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (मरणोत्तर अस्तित्व) फल, दु:ख और अपवर्ग (मोक्ष), यह बारह प्रमेय हैं। इनके स्वरूप का ज्ञान अपवर्ग के लिए उपयोगी है। महर्षि गौतम मानते हैं कि अपवर्ग के लिए सर्वप्रथम मिथ्या ज्ञान का नाश होना चाहिए। उसी से काम, क्रोधादि दोषों का नाश हो सकता है। उससे कर्म के प्रति प्रवृत्ति का नाश होगा, तथा प्रवृत्ति नाश से ही पुनर्जन्म श्रृंखला खंडित होगी। पुनर्जन्म श्रृंखला खंडित होने से ही दु:ख का नाश होगा, और दु:ख नाश ही अपवर्ग का स्वरूप है।

उपरोक्त वर्णन केवल प्रमाण के चार प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन है। इसके अतिरिक्त महर्षि गौतम ने प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धात, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह आदि पर भी पूर्ण वर्णन समाज कल्याण हेतु न्यायशास्त्र के रूप में दिया है।

महर्षि गौतम ने सामवेद की 'रानायनी शाखा' को स्थापित किया। इस सूत्र में महर्षि गौतम कहते हैं कि साधारण लोगों को महापुरुषों के चरित्र का कृत्रम अनुकरण नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए लोगों को महापुरुष होने का भ्रम पैदा कर पाप कर सकते हैं।

दृष्टो धर्म व्यतिक्रमः साहसं च महताम। अवर दौर्बल्ययाथ।

महापुरुषों ने धर्मानुसार महान कार्य किये हैं। चूंकि साधारण पुरुषों में वह असाधारण ऊर्जा एवं शक्ति नहीं है इस कारण उन्हें ऐसे महापुरुषों का कृत्रम अनुसरण नहीं करना चाहिए।

महर्षि गौतम ज्योतिष के बहुत बड़े ज्ञाता थे। ज्योतिष शास्त्र पर उन्होंने 'गौतम संहिता' की रचना की।

'गौतम संहिता' में पृथ्वी पर, ग्रहों और तारों के शुभ तथा अशुभ प्रभावों का अध्ययन किया गया है। यह ज्योतिष का यौगिक ग्रह तथा नक्षत्रों से संबंध रखने वाली विद्या है। इस से गणित (सिद्धांत) ज्योतिष का भी बोध होता है। इस पुस्तक में दर्शाया है कि ग्रहों तथा तारों के रंग भिन्न भिन्न प्रकार के दिखलाई पड़ते हैं, अतैव

उनसे निकलने वाली किरणों के भी भिन्न भिन्न प्रभाव हैं। पृथ्वी सौर मंडल का एक ग्रह है, अतैव इस पर तथा इसके निवासियों पर मुख्यतः सूर्य तथा सौर मंडल के ग्रहों और चंद्रमा का विशेष प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी विशेष कक्ष में चलती है, जिसे क्रांतिवृत्त कहते हैं। इस कक्ष के इर्द गिर्द कुछ तारामंडल हैं, जिन्हें राशियाँ कहते हैं। इसमें फलित ज्योतिष का वर्णन किया गया है। फलित ज्योतिष उस विद्या को कहते हैं जिसमें मनुष्य तथा पृथ्वी पर ग्रहों और तारों के शुभ तथा अशुभ प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

विवाह

महर्षि गौतम ने वयस्क अवस्था में ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रखा था। लेकिन संयोग कहिये या भगवद-लीला, अधेड़ आयु में उनका विवाह अहिल्या से हुआ।

पौराणिक कथाओं में अहिल्या जन्म एवं उनके विवाह की कथा कुछ इस प्रकार है।

एक बार इंद्रदेव किसी कारणवस अप्सरा उर्वशी से कुपित हो गए। उन्हें लगा कि उर्वशी को अपनी सुंदरता पर इतना अभिमान हो गया है कि उन्हें किसी का भी मान नहीं रहा, यहां तक कि स्वयं इंद्रदेव का। कुपित इंद्रदेव ब्रह्मदेव के आवास ब्रह्मलोक गए। उस समय ब्रह्मदेव सप्त-ऋषिओं के साथ यज्ञ करने की तैयारी में थे, और यज्ञ कुंड निर्मित किया जा रहा था। इंद्रदेव ने अपनी व्यथा ब्रह्मदेव को सुनाई तथा विनती की कि उर्वशी का अभिमान तोड़ने का कोई प्रयास करें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मदेव ने यग्न कुंड की मिट्टी से ही एक अत्यंत रूपवती बालिका की मूर्ति निर्मित की, और उसमें प्राण डाल दिए। अपनी इस स्वयं की कृति में ब्रह्मदेव को पूर्णता दृष्टिगोचर हुई। इतनी सुन्दर बालिका, कोई दोष नहीं। संसार में उर्वशी क्या, कोई भी अप्सरा, कोई भी नारी, ना इतनी रूपवान थी, ना है, और संभवतः ना कभी होगी। ब्रह्मदेव ने इस कन्या का नाम 'अहिल्या' रखा। अहिल्या का अर्थ है, जिसमें कोई दोष न हो।

अब सबसे बड़ा प्रश्न ब्रह्मदेव के मस्तिष्क में यह आया कि इतनी अपूर्व सुंदरी कन्या का लालन पालन बिना उसकी सुंदरता से प्रभावित होकर कौन कर सकता है? पूरी अपनी सृष्टि में उन्होंने दृष्टी डाली। केवल और केवल महर्षि गौतम ही उन्हें ऐसे दृष्टिगोचर हुए जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले रखा था, तथा ब्रह्मदेव की कोई उत्पत्ति उन्हें प्रभावित नहीं कर सकती थी। ब्रह्मदेव ने महर्षि गौतम से प्रार्थना की कि इस कन्या का वह लालन पालन करें। जब वह वयस्क हो जाए तो उसे ब्रह्मदेव को लौटा दें। ब्रह्मदेव पिता का कर्तव्य करते हुए तब उसके लिए उचित वर ढूंढेंगे और उसका विवाह कर देंगे। महर्षि ने ब्रह्मदेव के निर्देश को स्वीकार किया, और अहिल्या का लालन-पालन उनके आश्रम में उनके शिष्यों की पत्नियां (महर्षि-पत्नियां) एवं पुत्रियों (महर्षि-पुत्रियां) के साथ होने लगा।

इसी तरह समय बीतता गया और देखते देखते अहिल्या वयस्कता को प्राप्त हुईं। अपने वचनानुसार महर्षि गौतम अहिल्या को वयस्कता प्राप्त होने के पश्चात ब्रह्मलोक ले गए ताकि अब ब्रह्मदेव उनके लिए उचित वर ढूंढ सकें। यहां यह व्यक्तव्य सन्दर्भमय होगा कि अहिल्या ने अपने महर्षि गौतम के आश्रम में पूर्ण तन्मयता से उनकी सेवा की। अहिल्या की सेवा भावना से प्रभावित हो महर्षि गौतम ने उन्हें चिर-यौवन का वरदान भी दिया, अर्थात वो हमेशा १६ साल की ही रहेंगी, ऐसा वरदान दिया।

जिस समय महर्षि गौतम ब्रह्मलोक अहिल्या को लेकर ब्रह्मलोक पहुंचे, उस समय इन्द्रदेव भी किसी कार्यवश वहां ब्रह्मदेव के पास आये हुए थे। अहिल्या की सुंदरता देखते ही रह गए। जब महर्षि

गौतम वापस अपने आश्रम में चले गए तो इंद्रदेव ब्रह्मदेव से मिले और अहिल्या का विवाह उनके साथ करने का प्रस्ताव रखा। ब्रह्मदेव ने उनसे इस पर विचार करने का आश्वासन इंद्रदेव को दिया।

इसी समय महाराज जनक के राज-पुरोहित महर्षि याज्ञवल्कय ने राज-पुरोहिती से अवकाश प्राप्त कर संन्यास स्वीकार करने का निश्चय लिया। अपना निश्चय उन्होंने महाराज विदेह जनक को सुनाया। विदेह यह सुनकर अत्यंत चिंता में पड़ गए। उस समय दो ही तो महाज्ञानी महर्षि थे जो राज-पुरोहिती का पद स्वीकार किये हुए थे। एक तो महर्षि वशिष्ठ और दुसरे महर्षि याज्ञवल्कय। अन्य महाज्ञानी महर्षि तो इस सांसारिकता में पड़ना ही नहीं चाहते थे। अब महर्षि वशिष्ठ तो महाराज दशरथ के राज-पुरोहित हैं। वह तो महाराज जनक की राज-पुरोहिती स्वीकार करेंगे नहीं। किन महाज्ञानी महर्षि को यह पद दिया जाय? राज-पुरोहित का पद तो किसी महाज्ञानी को ही दिया जा सकता है, जो महाराज जनक के साथ साथ पूरे जनक साम्राज्य का मार्ग दर्शन कर सके। इसी दुविधा में जब वह अपने दरबार में विचारलीन थे तो संयोग कहिये या भगवान् की लीला, ब्रह्मऋषि नारद का महाराज जनक के दरबार में आगमन हुआ।

ब्रह्मऋषि नारद ने उनसे चिंता का कारण पूछा। महाराज विदेह ने विस्तार से ब्रह्मऋषि को महर्षि याज्ञवल्कय द्वारा संन्यास लेने की एवं उनकी अनुपस्थिति में राज-पुरोहित कार्य सम्हालने वाले महाज्ञानी महर्षि की अनभिज्ञता की बात बताई। ब्रह्मऋषि नारद महाराज विदेह को सांत्वना देते हुए बोले, "महाराज यह कार्य आप

मुझ पर छोड़ दीजिये। मैं आपके लिए एक महाज्ञानी महर्षि अवश्य ही ढूंढ कर आपकी सेवा में उपस्थित करूंगा जो आपके राज-पुरोहिती के लिए उचित होंगे।" यह कहकर ब्रह्मऋषि अपने भाई महर्षि याज्ञवल्कय के आश्रम में आये। इस विषय एवं अन्य आध्यात्मिक विषयों पर चर्चाएं कीं और कुछ समय वहां रहे। फिर अपना 'नारायण नारायण' का जाप करते हुए घूमते हुए अपने पितृगृह ब्रह्मलोक को चले। रास्ते में सोचते जाते थे कि मैंने इतना बड़ा वचन महाराज जनक को दे तो दिया, लेकिन स्वयं ब्रह्मा के अंश मेरे सहोदर भाई महर्षि याज्ञवल्कय के समान तो छोड़िये, उनके पासंग के बराबर भी ज्ञानी पुरुष मैं कहाँ से ढूंढ कर लाऊंगा जो महाराज जनक की राज-पुरोहिती स्वीकार करे? मेरे पिता ब्रह्मदेव इस में मेरी सहायता अवश्य करेंगे। बस यही सोचते सोचते वह ब्रह्मलोक में पहुँच गए।

वहां अपनी बहन अहिल्या को देखा, और पिता से मिलन किया। ब्रह्मदेव ने अहिल्या के जन्म, उसका महर्षि गौतम के द्वारा लालन पालन एवं वयस्कता प्राप्त करने पर वापस ब्रह्मलोक में छोड़ने का समस्त विवरण विस्तार पूर्वक कहा। यह भी कहा कि इंद्रदेव ने अहिल्या को विवाह में माँगा है। महर्षि गौतम की प्रशंसा की। इस अपूर्व सुंदरी का लालन-पालन करने में एक बार भी उनका मन इसकी सुंदरता के बारे में चिंतन करने पर नहीं डोला। कितने संयमी और ब्रह्मचर्य व्रत पालनहार है, महर्षि गौतम। ऐसा चरित्रवान महर्षि मेरी पूर्ण सृष्टी में कहीं नहीं है।

ब्रह्मऋषि नारद विचार में डूब गए। अगर यह संभव हो सके कि मैं अहिल्या का विवाह महर्षि गौतम से करवा दूँ तो इनसे प्राप्त पुत्र

अत्यंत महाज्ञानी होगा। अहिल्या स्वयं ब्रह्मा की पुत्री, मेरी और महर्षि याज्ञवल्कय की बहन हैं। उनकी सुंदरता और ज्ञान, महर्षि गौतम का चरित्र और आध्यात्मिक ज्ञान, इसका कोई विकल्प नहीं। इन दोनों से प्राप्त पुत्र में इन दोनों के ही गुण होंगे। तुरंत अपना विचार पिता ब्रह्मदेव को कहा, 'मेरी बहन का विवाह आप कामी, बहु-विवाह वाले एवं अप्सराओं में लिप्त इंद्र से करेंगे, यह उचित नहीं। मेरी बहन का विवाह तो अत्यंत संयमी एवं महाज्ञानी महर्षि से ही होना चाहिए और मेरी समझ में इस सृष्टी में महर्षि गौतम से उपयुक्त अहिल्या के लिए कोई वर नहीं है।'

ब्रह्मदेव चिंता में पड़ गए, 'मैंने तो इंद्रदेव को वचन दिया है कि मैं उनके प्रस्ताव पर विचार करूंगा। क्या कहकर अब उनसे मना किया जाएगा?' ब्रह्मदेव और ब्रह्मऋषि नारद में मंत्रणा होने लगी। ऐसा निश्चय हुआ कि ब्रह्मदेव यह घोषणा करें कि अहिल्या के विवाह के लिए एक प्रतियोगिता आयोजित की है। जो भी प्रतियोगिता प्रारम्भ होने पर, सब से पहले तीनों लोकों की परिक्रमा कर ब्रह्मलोक वापस आएगा, उसी से अहिल्या का विवाह होगा। प्रतियोगिता की दिनांक निर्धारित कर दी गयी।

अब ब्रह्मऋषि नारद अपने भ्राता महर्षि याज्ञवल्कय के आश्रम मिथलापुरी पहुंचे, और अपनी योजना से अवगत कराया। महर्षि याज्ञवल्कय की सहमति प्राप्त कर दोनों ने मिलकर योजना बनाई। सर्व प्रथम महर्षि गौतम को विवाह के लिए मनाना था। यहाँ ब्रह्मऋषि नारद ने महर्षि याज्ञवल्कय की अनुमति से इस विवाह का विचार महर्षि गौतम जी के समक्ष रखने की योजना बनाई, इस सहमति के साथ कि यह प्रस्ताव ब्रह्मपुत्र महर्षि याज्ञवल्कय का है।

ब्रह्मऋषि नारद जानते थे कि महर्षि याज्ञवल्कय के प्रस्ताव को महर्षि गौतम कभी नहीं ठुकरायेंगे। पहली अड़चन तो संभवतः दूर हो जाएगी, अर्थात ब्रह्मऋषि को पूर्ण विश्वास था कि महर्षि गौतम विवाह को तो तैयार हो जांयेंगे, परन्तु दूसरी अड़चन कि वह प्रतियोगिता में भाग लें और प्रथम भी आएं, यह कैसे सुनिश्चित किया जाए? इसका समाधान महर्षि याज्ञवल्कय ने तुरंत दे दिया।

महर्षि याज्ञवल्कय ने सुझाव दिया कि महर्षि गौतम के पास एक सुरभी नामक गौ माता हैं, जो कामधेनु माँ की बहन हैं। गौ माँ सुरभी की परिक्रमा तीनों लोकों की परिक्रमा के बराबर है। गौ माँ में तीनो लोकों का वास है। बस महर्षि गौतम जी को प्रतियोगिता प्रारम्भ होने के तुरंत पश्चात माँ सुरभी की परिक्रमा करके शीघ्र ब्रह्मलोक पहुंचना है। बाकी जब शास्त्रार्थ होगा तो स्वयं महर्षि याज्ञवल्कय यह सिद्ध कर देंगे कि गौ माँ सुरभी की परिक्रमा तीनों लोकों की परिक्रमा के बराबर है, और महर्षि गौतम को विजयी घोषित कर देंगे।

इसी योजना के अनुसार कार्य हुआ। ब्रह्मऋषि नारद महर्षि गौतम के पास पहुंचे। महर्षि याज्ञवल्कय का उनका अहिल्या के साथ विवाह प्रस्ताव सुनाया। बड़े अनमने मन से, परन्तु महर्षि याज्ञवल्कय के प्रस्ताव को उनका आदेश मानकर महर्षि गौतम विवाह के लिये तैयार हो गए। प्रतियोगिता का दिन आया। योजना के अनुसार महर्षि याज्ञवल्कय को ब्रह्मदेव ने न्यायाधीश के पद पर बिठा दिया। महर्षि गौतम तुरंत प्रतियोगिता प्रारम्भ के पश्चात गौ माँ सुरभी की परिक्रमा कर ब्रह्मलोक पहुंचे। बाद में इंद्रदेव भी तीन लोकों की परिक्रमा कर ब्रह्मलोक पहुंचे। लेकिन महर्षि याज्ञवल्कय

ने महर्षि गौतम को विजेता घोषित कर दिया। इंद्र ने यह निर्णय मानने से मना कर दिया। देवगुरु वृहस्पति इंद्र की ओर से शास्त्रार्थ करने को तैयार हुए। महर्षि याज्ञवल्कय और देवगुरु वृहस्पति में शास्त्रार्थ हुआ। अंततः जीत महर्षि याज्ञवल्कय की हुई, और इस तरह अहिल्या का विवाह महर्षि गौतम से हो गया।

जनकल्याण यज्ञ

महर्षि गौतम विवाह पश्चात अपनी धर्मपत्नी अहिल्या के साथ नासिक के पास आश्रम बनाकर अपने शिष्यों के साथ रहने लगे। एक बार इस भूतल पर बारह वर्ष अनावृष्टि के कारण भयंकर अकाल पड़ा। परिणामस्वरूप असंख्य जीवधारियों के साथ औषधियों का भी विनाश होने लगा। इस संदर्भ में महर्षि गौतम ने जनकल्याण हेतु सत्र यज्ञ का संकल्प किया। पितामह ब्रह्मा महर्षि गौतम के संकल्प पर हर्षित हुए। उन्होंने चिंतामणि सदृश धान के बीज महर्षि गौतम को प्रदान किए। उन बीजों का माहात्म्य सुनिए, प्रथम पहर में वे बीज बो देते है तो दूसरे पहर में कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। मध्याह्न के समय धान से अन्न बनाकर भोजन किया जा सकता है।

ब्रह्मा से प्राप्त इस अपूर्व धान के कारण महर्षि गौतम यज्ञ में सम्मिलित हुए सभी जनों को समय पर अन्न दान करते रहे। यह समाचार दावानल की भांति सर्वत्र फैल गया। फिर क्या था? क्षुधा पीड़ित मुनि और वनवासी आश्रम में पहुंचने लगे, और सत्कार पाकर यज्ञ समाप्ति तक वहीं रहे।

इस बीच अनावृष्टि समाप्त हो गई। समस्त भूमंडल पर भारी वर्षा हुई। सारी धरती शस्य-श्यामला हो हरीतिमा से लहलहा उठी। अन्न का अकाल दूर हो गया। यज्ञ में आहूत ऋत्विज मुनि अब अपने अपने आश्रमों को लौटने की तैयारी करने लगे। वनवासी अपने अपने निवास को लौट गए। परंतु गौतम मुनि ने तपस्वियों को थोड़े समय तक और रुक जाने की अभ्यर्थना की।

समस्त मुनिगण इस विनय पर महर्षि गौतम के आश्रम में ही रह गए। जब महर्षि गौतम द्वारा आयोजित नववर्ष शतक्रतु समाप्त हो चुका, तब कुछ मुनियों ने अपने आश्रमों का संकल्प किया और महर्षि गौतम से अनुमति मांगी। परंतु महर्षि गौतम ने उनको अनुमति नहीं दी। इस पर वे सोचने लगे, 'हम लोग दुर्भिक्ष के समय महर्षि गौतम के आश्रम में रहे, यह उचित भी था। किंतु जब सारा देश सुभिक्षित है, तब भी वह बलपूर्वक हम लोगों को रोक रहे हैं, यह अच्छा नहीं है। लगता है कि इनके भीतर अन्न दान करने का अहंकार हो गया है। हम लोग केवल इनके आश्रम में रहकर अपना पेट पाल रहे हैं और हमारा अस्तित्व कुछ है ही नहीं। यह ही क्या एक तपोबल रखते हैं और क्या अकेले ही वेद शास्त्रों के ज्ञाता हैं? इनको किसी प्रकार से दोषी ठहराकर इनके अहंकार का दमन करके हमें यहां से निकलना चाहिए।'

इस प्रकार विचार करते हुए द्वेषी मुनियों ने एक मायावी गाय की सृष्टि की और उसको महर्षि गौतम के खेत में छोड़ आए। गाय के गले में एक पगड़ी बंधी हुई थी और उसके साथ एक बछड़ा भी था। गाय धान और गेहूं की फसल चर रही थी। महर्षि गौतम जब प्रात: कालीन स्नान-संध्या आदि नित्य नैमित्तिक कृत्यों से निवृत्त होकर अपने आश्रम को लौट रहे थे, तब खेत में फसल चरती गाय को देख महर्षि ने उसे हांक दिया। पर वह हिली डुली नहीं। इस पर महर्षि गौतम ने अपने कमंडल का जल हाथ में डालकर गाय पर छिड़क दिया। जल का स्पर्श लगते ही गाय ने खेत में ही अपने प्राण त्याग दिए। महर्षि गौतम गाय की मृत्यु पर चकित रह गए। अपने आश्रम लौटकर महर्षि ने मुनियों को सब बतलाया और उनसे पूछा, 'हे तपस्वियो, मैंने खेत में चरती गाय को हांका और

जल छिड़क दिया। मैंने गाय को मृत पाया। क्या यह गो-वध है, और अगर है तो इसका प्रायश्चित क्या होगा?

तपस्वियों ने कहा कि आपने इच्छापूर्वक गाय का वध कर डाला। इसके लिए प्रायश्चित का कोई विधान नहीं है। यदि आप गाय को जीवित देखना चाहते हैं तो एक ही उपाय है कि दिव्य जल से उसे अभिषिक्त करें। जब तक यह न हो जाए तब तक आप यज्ञादि संपन्न नहीं कर सकते। इस जघन्य पाप के भागी हुए आपके आश्रम में अब हम एक क्षण भी नहीं ठहर सकते। यह कह कर समस्त मुनि मंडल साधु पुरुष महर्षि गौतम के आश्रम से चले गए।

इसके उपरांत महर्षि गौतम ने गंगा जल से गाय को पुनर्जीवित करने का निश्चय करके गंगाधर शिव जी के प्रति घोर तपस्या करने का संकल्प किया। कैलाश शिखर पर पहुंचकर अनेक वर्षों तक महर्षि गौतम ने तपस्या की। महर्षि गौतम की तपस्या पर प्रमुदित होकर भक्तवत्सल शिव शंकर ने प्रत्यक्ष होकर पूछा, 'महर्षि गौतम, मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं। मांगो, तुम कैसा वरदान चाहते हो?' इस पर महर्षि गौतम ने भक्ति पूर्वक महेश्वर को प्रणाम करके निवेदन किया, 'भगवन, मुझे गंगा प्रदान कीजिए।'

तत्काल शिव जी ने अपने जटाजूट से एक जटा निकालकर महर्षि गौतम के हाथ में दी और कहा, 'तपस्वी, तुम जलसिक्त इस जटा को ले जाकर मृत गाय के स्थल पर रख दो। वहां पर एक नदी का उद्भव होगा। नदी जल के स्पर्श मात्र से गाय पुनर्जीवित होगी और तुम गो-वध के पाप से मुक्त हो जाओगे। साथ ही इस घटना के षड्यंत्र का भी तुम्हें बोध होगा।'

महादेव के अदृश्य होते ही महर्षि गौतम ने जटा को ले जाकर मृत गाय के स्थल पर रख दिया। उसी क्षण वहां तेज धार वाली गंगा प्रादुर्भूत हुई, और गंगाजल के स्पर्श से गाय जीवित हो उठी। इसके बाद गंगा की वह धारा महर्षि गौतम के पीछे बह चली। गाय की रक्षा जिस धारा से हुई, वह गोदावरी नाम से विख्यात हुई और महर्षि गौतम इस धारा को लाए थे, इस कारण वह महानदी 'गौतमी' नाम से भी लोक प्रशस्त हुई।

महेश्वर की महिमा से महर्षि गौतम को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। मुनियों की प्रवंचना से परिचित हो महर्षि गौतम ने उन कृतघ्न तपस्वियों को शाप दिया, 'तुम लोग अपने ज्ञान से वंचित होकर तपोविहीन बन जाओगे।'

इस श्राप को प्राप्त कर, मुनियों के मन में घोर पश्चाताप हुआ। महर्षि गौतम के चरण पकड़ कर क्षमा माँगी तथा इस श्राप से मुक्ति का मार्ग सुझाने की प्रार्थना की। तब महर्षि ने दया कर उन्हें सत्कर्म फल प्राप्त करने के लिए सह्याद्रि में स्थित भैरव क्षेत्र में जाने का उपाय बताया। तब महर्षि गौतम से विदा लेकर मुनिगण पुण्यप्रदायी भैरव क्षेत्र की ओर निकल पड़े।

गृहस्थ जीवन

जैसा ऊपर वर्णित है, महान पतिवृता, शांतिप्रिय, ज्ञानी, अति सुन्दर अहिल्या से विवाह कर महर्षि गौतम नासिक के पास आश्रम बना कर वहां अपने शिष्यों के साथ रहने लगे। अहिल्या के बारे में हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि वह प्रातःस्मरणीय हैं। उनके स्मरण मात्र से ही समस्त पापों का नाश हो जाता है।

अहिल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशिन्याः ॥

अहिल्या , द्रौपदी, सीता, तारा और मंदोदरी इनका प्रतिदिन प्रातः स्मरण करना चाहिए। ये महा पापों का नाश करने वाली हैं।

महर्षि गौतम के दो पुत्र एवं एक पुत्री का उल्लेख मिलता है। उनके पुत्रों के नाम सतानन्द और शरद्वान थे, तथा पुत्री का नाम अंजनी था, जो भगवान् हनुमान की माँ बनीं।

सतानंद जी प्रखर बुद्धि वाले एक अत्यंत तेजस्वी महर्षि थे। इन्हीं को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मऋषि नारद एवं ब्रह्मपुत्र महर्षि याग्यवल्क्य ने अहिल्या का विवाह महर्षि गौतम से करवाया था। इनको शास्त्रों से बहुत लगाव था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्वयं महर्षि गौतम ने दी। व्यस्क होने पर ब्रह्मऋषि नारद इन्हें ज्ञान प्राप्ति के लिए महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में ले गए। महर्षि विश्वामित्र ने समस्त वेदों, पुराणों, अर्थशास्त्र एवं राजनीति का इन्हें ज्ञान दिया। शिक्षा पूर्ण करने के बाद ब्रह्मऋषि नारद स्वयं उन्हें सम्राट विदेह

जनक के पास ले गए और उन्हें सम्राट विदेह जनक का राज-पुरोहित नियुक्त किया।

महर्षि गौतम के दूसरे पुत्र का नाम शरद्वान था। उन्हें वेदाभ्यास में जरा भी रुचि नहीं थी। धनुर्विद्या से उन्हें अत्यधिक लगाव था। वे भगवान् परसुराम के शिष्य बन धनुर्विद्या में इतने निपुण हो गये कि देवराज इन्द्र उनसे भयभीत रहने लगे। इन्द्र ने उन्हें साधना से डिगाने के लिये नामपदी नामक एक देवकन्या को उनके पास भेज दिया। उस देवकन्या के सौन्दर्य के प्रभाव से शरद्वान इतने काम पीड़ित हुये कि उनका वीर्य स्खलित हो कर एक सरकंडे पर आ गिरा। वह सरकंडा दो भागों में विभक्त हो गया, जिसमें से एक भाग से कृप नामक बालक उत्पन्न हुआ और दूसरे भाग से कृपी नामक कन्या उत्पन्न हुई। कृप भी धनुर्विद्या में अपने पिता के समान ही पारंगत हुये। पितामह भीष्म ने इन्हीं कृप को पाण्डवों और कौरवों की शिक्षा-दीक्षा के लिये नियुक्त किया और वे कृपाचार्य के नाम से विख्यात हुये।

गौतम महर्षि की पुत्री अंजनी हुईं। अंजनी भगवान् हनुमान की माँ बनी।

अहिल्या को श्राप

महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहिल्या के साथ सुख से रह रहे थे। देवराज इंद्र ब्रह्मदेव अहिल्या से अपने विवाह का प्रस्ताव, और उसका ब्रह्मदेव द्वारा तिरष्कार, अभी भूले नहीं थे। अहिल्या की सुंदरता उनके मन मष्तिष्क में बुरी तरह छाई हुई थी। हर संभव अवसर ढूंढते थे कि किस तरह अहिल्या से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किये जाएं। आखिर एक रात्रि को उन्हें अवसर मिल ही गया।

इन्द्र को अहिल्या को पाने की एक युक्ति सूझी। उन्होंने प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में महर्षि गौतम के वेश में आकर अहिल्या के साथ काम-क्रीड़ा करने की योजना बनाई। उन्हें विदित था कि सूर्य उदय होने से पूर्व ही महर्षि गौतम नदी में स्नान करने के लिए चले जाते थे, और करीब २-३ घंटे बाद पूजा करने के बाद ही लौटते थे। इन्द्र आधी रात से ही कुटिया के बाहर छिपकर महर्षि के जाने की प्रतीक्षा करने लगे। इसी मध्य इन्द्र की कामेच्छा उन पर इतनी हावी हो गई कि उन्हें एक और योजना सूझी। उन्होंने अपनी माया से ऐसा वातावरण बनाया जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि ब्रह्म-मुहूर्त हो गया। इस माया को सत्य समझकर महर्षि गौतम कुटिया से बाहर चले गए। उनके स्नान, पूजा आदि के लिए जाने के कुछ समय बाद इन्द्र ने महर्षि गौतम का वेश बनाया, और कुटिया में प्रवेश किया। उन्होंने आते ही अहिल्या से प्रणय निवेदन किया। अपने पति द्वारा इस तरह के विचित्र व्यवहार को देखकर देवी अहिल्या को शंका हुई। महा-पतिव्रता अहिल्या ने इंद्र की विशेष सुगन्धि से उन्हें पहचान लिया। इंद्रदेव को समझाने का प्रयास

किया कि वह विवाहिता नारी हैं। यह उनके सतीत्व का अपमान होगा। लेकिन इंद्र का मन मस्तिष्क तो बुरी तरह से काम वासना से पीड़ित था। अहिल्या ने शांति पूर्व ढंग से विनय की कि इंद्रदेव वापस लौट जाएँ अन्यथा अपने सतीत्व के तेज से वह उन्हें श्राप दे देंगी। अब इंद्र को होश आया, और वह चुपचाप वहां से जाने लगे।

इधर नदी के पास पहुंचने पर महर्षि गौतम ने आसपास का वातावरण देख अनुभव किया कि अभी भोर नहीं हुई है। वह किसी अनहोनी की कल्पना करके अपने आश्रम तुरंत लौटे। वहां जाकर उन्होंने देखा कि उनके वेश में कोई दूसरा पुरुष उनकी कुटिया से बाहर निकल रहा है।

यह देखते ही वह क्रोधित हो गए। क्रोध में महर्षि गौतम ने इन्द्र से कहा, 'मूर्ख, तूने मेरी पत्नी के स्त्रीत्व भंग का प्रयास किया है। उसकी योनि को पाने की इच्छा मात्र के लिए तूने इतना बड़ा अपराध करने का प्रयास किया। तुझे स्त्री-योनि को पाने की इतनी ही लालसा है तो मैं तुझे श्राप देता हूं कि अभी इसी समय तेरे पूरे शरीर पर सहस्त्र स्त्री-योनियां उत्पन्न हो जाएं।'

कुछ ही पलों में श्राप का प्रभाव इन्द्र के शरीर पर पड़ने लगा, और उनके पूरे शरीर पर सहस्त्र स्त्री-योनियां निकल आईं। यह देखकर इन्द्र आत्म-ग्लानि से भर उठे। उन्होंने हाथ जोड़कर महर्षि गौतम से श्राप मुक्ति की प्रार्थना की। महर्षि ने इन्द्र पर दया करते हुए सहस्त्र स्त्री-योनियों को सहस्त्र आंखों में बदल दिया।

इधर अहिल्या यह दृश्य देखकर क्षुब्धित हो गयीं। उनके मस्तिष्क को इतना आघात लगा कि वह पत्थर जैसी हो गयीं।

तब सतानंद बालक ने अपने पिता की बहुत स्तुति की तथा माँ को इस क्षुब्धिता से बाहर निकालने की प्रार्थना की। महर्षि गौतम बालक सदानंद की प्रार्थना से प्रसन्न होकर बोले, 'भगवान् राम का जब इस आश्रम में महर्षि विश्वामित्र के साथ आगमन होगा, तब उनकी चरण रज पड़ने से तुम्हारी माँ की क्षुब्धिता समाप्त होगी और फिर से वह अपने ज्ञान को प्राप्त करेंगी।'

इसी समय ब्रह्मऋषि नारद का वहां आगमन हुआ। अपने पुत्र सतानंद को उन्होंने ब्रह्मऋषि को सौंपा जो उन्हें महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में ले गए। वहां उन्होंने समस्त विद्याएं ग्रहण कीं। पुत्री अंजनी तपस्या करने ऋष्यमूक पर्वत पर चली गयीं। शरद्वान जी धनुर्विद्या अभ्यास के लिए पहले ही भगवान् परसुराम के पास जा चुके थे। स्वयं महर्षि गौतम ने भी जब तक अहिल्या पूर्ववत ज्ञान-स्थिति में नहीं आ जातीं तब तक भगवान् शिव शंकर की आराधना के लिए कैलाश जाने का प्रण लिया। अपनी एक परम शिष्या सुशीला को अहिल्या की सेवा सुश्रुषा करने छोड़ा तथा कैलाश को प्रस्थान किया।

अहिल्या उद्धार का चित्रण गोस्वामी श्री तुलसी दास जी ने बहुत अच्छे ढंग से श्री राम चरित मानस में किया है।

जब भगवान् श्री राम, ताड़का, सुबाहू और अन्य राक्षसों का वध कर मुनियों के यज्ञों की रक्षा करने के पश्चात सीता माँ के स्वयंवर देखने

के लिए महर्षि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी जा रहे थे तो रास्ते में उन्होंने एक आश्रम देखा जो रिक्त सा दिखाई दे रहा था। वहाँ पशु, पक्षी अन्यथा कोई भी जीव-जन्तु नहीं था। पत्थर शिलावत एक स्त्री को वहां देखकर उसके बारे में प्रभु ने पूछा, तब मुनि ने विस्तारपूर्वक सब कथा कही।

आश्रम एक दीख मग माहीं, खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं ।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी, सकल कथा मुनि कहा बिसेषी ।।

गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या पत्थरवत देह धारण किए बड़े धीरज से आपके चरण-कमलों की धूल चाहती है। हे रघुवीर! इस पर कृपा कीजिए।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ।।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ।।

श्री राम के पवित्र और शोक को नाश करने वाले चरण रज का स्पर्श पाते ही वह तपोमूर्ति अहिल्या ज्ञानरूप शरीर में प्रकट हो गई। भक्तों को सुख देने वाले श्री रघुनाथ को देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गईं। अत्यन्त प्रेम के कारण वह अधीर हो गईं। उनका शरीर पुलकित हो उठा। मुख से वचन कहने में नहीं

आते थे। वह अत्यन्त बड़भागिनी अहिल्या प्रभु के चरणों से लिपट गईं। उनके दोनों नेत्रों से जल (प्रेम और आनंद के आँसुओं) की धारा बहने लगी।

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ।।
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ।।

फिर उन्होंने मन में धीरज धरकर प्रभु को पहचाना और श्री रघुनाथ की कृपा से भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणी से उन्होंने (इस प्रकार) स्तुति प्रारंभ की, 'हे ज्ञान से जानने योग्य श्री रघुनाथ, आपकी जय हो। मैं (सहज ही) अपवित्र स्त्री हूँ। हे प्रभो, आप जगत को पवित्र करने वाले, भक्तों को सुख देने वाले और रावण के शत्रु हैं। हे कमलनयन, हे संसार (जन्म-मृत्यु) के भय से छुड़ाने वाले प्रभु, मैं आपकी शरण आई हूँ, (मेरी) रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।'

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।।

'हे प्रभु, मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ। मेरी एक विनती है। हे नाथ, मैं और कोई वर नहीं माँगती। केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मन रूपी भौंरा आपके चरण-कमल की रज के प्रेमरूपी रस का सदा पान करता रहे।'

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ।।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी ।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी ।।

जिन चरणों से परम पवित्र देव-नदी गंगाजी प्रकट हुईं, जिन्हें शिवजी ने सिर पर धारण किया और जिन चरण रज को ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु हरि (आप) ने उसी रज को अहिल्या के सिर पर धारण कराया।

इस प्रकार (स्तुति करती हुई) बार-बार भगवान के चरणों में गिरकर जो मन को बहुत ही अच्छा लगा, उस वर को पाकर गौतम की स्त्री अहिल्या आनंद में भरी हुई पति लोक को चली गई और गौतम महर्षि से उनका पुनर्मिलन हुआ।

उपसंहार

महर्षि गौतम एक अत्यंत विनम्र साधु प्रकृति के अत्यंत ज्ञानी सिद्ध महापुरुषों में से एक थे। महर्षि ने समस्त भारत का कई बार भ्रमण किया और अनेक स्थानों पर अपने आश्रम बनाये। वह भगवान् शिव के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अनेक शिव मंदिरों का निर्माण कराया। महर्षि गौतम को ब्रह्मदेव ने सप्त-ऋषिओं में से एक महर्षि के पद से सम्मानित किया। महर्षि ने गौतम गोत्र की नींव डाली।

महर्षि गौतम के अनुयायी समस्त भारत में फैले हुए हैं। उनके द्वारा स्थापित मंदिरों में कुछ मुख्य मंदिरों का यहां उल्लेख किया जाता है।

त्र्यंबकेश्वर मंदिर नासिक

त्र्यंबकेश्वर मंदिर नासिक में स्थित है। इसको महर्षि गौतम का मुख्य आश्रम माना जाता है। यह ब्रह्मगिरि पहाड़ियों में जिला नासिक महाराष्ट्र में स्थित है। ऐसा माना जाता है कि महर्षि अपनी धर्म पत्नी अहिल्या के साथ सबसे अधिक समय इसी आश्रम में रहे। गौतमी गंगा के चरणों में यहां उन्होंने भगवान् शिव कि आराधना की और शिव मंदिर की स्थापना की। त्र्यंबकेश्वर १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक है। यहां हर १२ वर्ष के बाद कुम्भ मेला होता है।

चन्द्रबाणी (गौतम कुंड) मंदिर

देहरादून-दिल्ली मार्ग पर देहरादून से ७ कि॰मी॰ दूर यह मंदिर चन्द्रबाणी में स्थित है। एक पौराणिक कथा के अनुसार महर्षि गौतम अपनी पुत्री अंजना के साथ यहां निवास करते थे। इस कारण मंदिर में इनकी पूजा की जाती है। ऐसा कहा जाता है कि स्वर्ग-पुत्री गंगा इसी स्थान पर अवतरित हुई जो अब गौतम कुंड के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक वर्ष श्रद्धालु इस पवित्र कुंड में डुबकी लगाते हैं। मुख्य सड़क से २ कि॰मी॰ दूर शिवालिक पहाड़ियों के मध्य यह एक सुंदर पर्यटन स्थल है।

छपरा गौतम आश्रम

'छपरा गौतम आश्रम' छपरा बिहार से ५ किलो मीटर दूर पश्चिम की ओर स्थित है। इसे अहिल्या उद्धार स्थान के नाम से भी जाना जाता है। घाघरा नदी के किनारे यहां हर कार्तिक पूर्णिमा को बड़ा मेला लगता है। यहाँ के मंदिर में भगवान् श्री राम, माँ सीता के साथ माँ अहिल्या और महर्षि गौतम की भी प्रतिमाएं हैं।

सीहोर सौराष्ट्र मंदिर गुजरात

यह सीहोर सौराष्ट्र मंदिर महर्षि गौतम के तपोवनी के नाम से प्रसिद्ध है। यहां एक गुफा में महर्षि ने स्वयंभू लिंग की खोज की, और फिर भगवान् शिव मंदिर की स्थापना की, जिसे 'गौतमेश्वर मंदिर' के नाम से जाना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस मंदिर से सोमनाथ मंदिर तक के लिए एक गुप्त गुफा है।

गोशाल मनाली हिमाचल प्रदेश

यह महर्षि गौतम को समर्पित मंदिर गोशाल मनाली में है। इस मंदिर की विशेषता है कि यहां मौन व्रत धारण कर महर्षि गौतम की स्तुति की जाती है। यहां मकर संक्रांति से ४५ दिनों तक लोग मौन व्रत धारण कर महर्षि की कृपा के लिए पूजा करते हैं।

महर्षि द्वारा स्थापित अन्य मंदिर एवं आश्रम

इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में वृंदावन, मथुरा, काशी और मंदसौर, राजस्थान में माउंट आबू, जयपुर, जोधपुर, सिरोही, शिवगंज, अर्णोदा, एवं पुष्कर, तथा जम्मू काश्मीर में गौतम नाग, गौतम तपोस्थली गढ़वाल और नेपाल में पनौती में महर्षि द्वारा स्थापित मंदिर एवं आश्रम हैं।

डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधि विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, महर्षियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।